पारस परस

वर्ष-13, अंक-1, जनवरी-मार्च, 2023, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

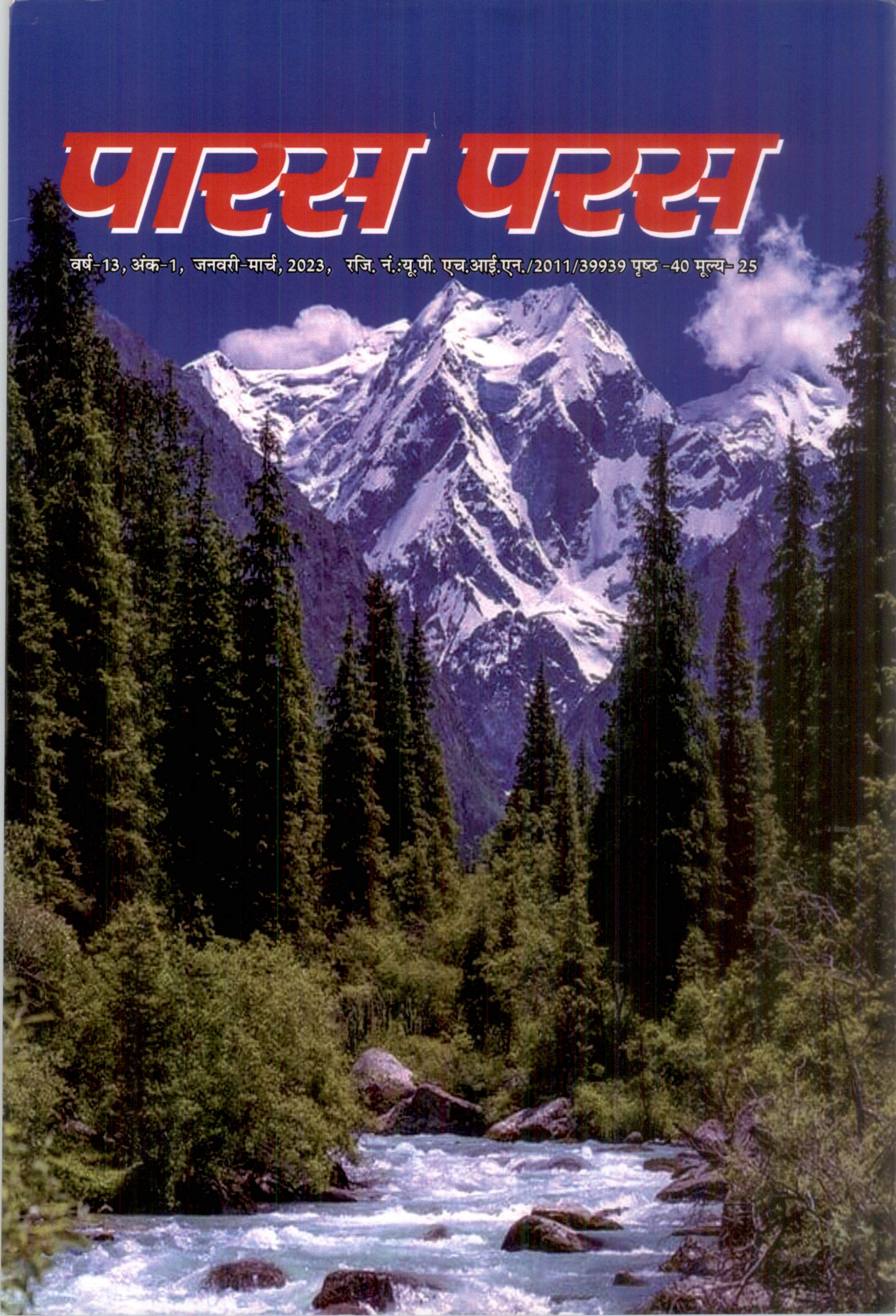

रामनरेश त्रिपाठी

जन्म- 04 मार्च 1889, निधन- 16 जनवरी 1962

यदि रक्त बूँद भर भी होगा कहीं बदन में
नस एक भी फड़कती होगी समस्त तन में।
यदि एक भी रहेगी बाकी तरंग मन में।
हर एक साँस पर हम आगे बढ़े चलेंगे।
वह लक्ष्य सामने है पीछे नहीं टलेंगे

मंजिल बहुत बड़ी है पर शाम ढल रही है।
सरिता मुसीबतों की आग उबल रही है।
तूफान उठ रहा है, प्रलयाग्नि जल रही है।
हम प्राण होम देंगे, हँसते हुए जलेंगे।
पीछे नहीं टलेंगे, आगे बढ़े चलेंगे

अचरज नहीं कि साथी भग जाएँ छोड़ भय में।
घबराएँ क्यों, खड़े हैं भगवान जो हृदय में।
धुन ध्यान में धँसी है, विश्वास है विजय में।
बस और चाहिए क्या, दम एकदम न लेंगे।
जब तक पहुँच न लेंगे, आगे बढ़े चलेंगे।

वर्ष : 13 अंक : 1 जनवरी-मार्च, 2023 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. शम्भुनाथ

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिन्टर्स, लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
मात–पिता बिन सब रीता है	डॉ. अनिल कुमार	4
पुण्य स्मरण	पं0. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
कालजयी		
गोस्वामी तुलसीदास के प्रति	पं0. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	6
अतुलनीय जिनके प्रताप का	रामनरेश त्रिपाठी	7
देश–गीत	श्रीधर पाठक	8
गाँव की धरती	नरेन्द्र शर्मा	9
समय के सारथी		
दर्द पलता रहा	पद्मश्री विद्या विन्दु सिंह	10
विलम्बित में	यतीन्द्र मिश्र	11
मेरी पगडंडी मत भूलना	ओम निश्चल	12
मत करो अलगाव	ओम नीरव	13
मंजिल	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	14
आजादी कै कपास	भारतेन्दु मिश्र	15
गांव बचपन का	रामदरश मिश्र	16
कलरव		
एक बूँद	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	17
मेरा देश	सोहनलाल द्विवेदी	18
कोयल	सुभद्रा कुमारी चौहान	19
पुस्तक	डा. दिविक रमेश	20
नारी स्वर		
प्रेम कविता	अंजू शर्मा	21
नदी	नंदा पाण्डेय	22
घर	गीताश्री	23
एक बार फिर	दीपा मिश्रा	24
जिन्दगी के चन्द लम्हे...	देवी नांगरानी	25
तुम आओ भी	निवेदिता	26
मिलकर बात करते हैं	डा. प्रज्ञा बाजपेयी	27
बसन्त के छींटे	मंजूषा मन	28
छाँव	मृदुला शुक्ला	29
उद्‌बोधन		
उद्‌बोधन	मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी'	30
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान	गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'	31
साबरमती के सन्त	प्रदीप	32
ध्वज–वंदना	रामधारी सिंह दिनकर	33
शहीदों की चिताओं पर	जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी'	34
नवोदित रचनाकार		
सब कुछ नहीं होता समाप्त	मनीष मिश्र	35
हमारी आँखें लुप्त हो रही हैं	रवि कुमार	36
गवाही	रजत कृष्ण	37
समय विश्वास का	विनय मिश्र	38
वेदना से प्रीति की भाँवर हुई तो	संदीप 'सरस'	39
रचना क्या है?..	हिमांशु पाण्डेय	40

मातृभाषा हिन्दी

कहा जाता है कि मनुष्य के भावों की सटीक अभिव्यक्ति तथा उसका विस्तार मातृभाषा के माध्यम से ही संभव है। जीवन के प्रारम्भ से ही माँ के स्नेह व संरक्षण के कारण हम किसी विपत्ति या कष्ट के पलों में सामान्यतः माँ को याद करते हैं। चूँकि बचपन से ही माँ के द्वारा अभिव्यक्त की गई बातों को सुनने, समझने व बोलने का माध्यम माँ द्वारा बोली जाने वाली भाषा होती है, इसीलिए इसे मातृभाषा कहा जाता है। इस प्रकार भाषा कहीं न कहीं आत्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम है और निश्चित रूप से यह अपनेपन, लगाव व जुड़ाव की द्योतक है। तुलसीदास जी का यह संकल्प कि 'भाखाबद्ध करौ मैं सोई' या कबीरदास जी का कथन कि ''संसकीरत है कूपजल भाखा बहता नीर'' निश्चित रूप से मातृभाषा के माध्यम से लोगों से व्यापक स्तर पर जुड़ने की ओर संकेत करता है और इसी कारण यह मातृभाषा समाज की जीवंतता की ओर संकेत है। इसी संदर्भ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का निम्न कथन मातृभाषा की महत्ता को प्रदर्शित करता है :

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल,
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल'।।

वैसे तो ज्ञान प्राप्ति की दृष्टि से प्रत्येक भाषा की अपनी महत्ता एवं प्रतिष्ठा है किन्तु जब एक भाषा मातृभाषा के रूप में सुनी, समझी, बोली व पढ़ी जाती है तथा उसके माध्यम से ज्ञान–विज्ञान का अर्जन किया जाता है तो उसके साथ निर्मित आत्मसम्बन्ध विषयों की प्रभावकारी और बेहतर समझ उत्पन्न करता है। इसी संदर्भ में जब हम मातृभाषा हिन्दी के विषय में बात करते हैं तो यह करोड़ों भारतीयों की ही नहीं अपितु विश्व के विभिन्न देशों में रह रहे बहुत से लोगों की मातृभाषा है। इसीलिए इस भाषा की उत्पत्ति और इसकी विकास यात्रा, इसके विभिन्न स्वरूपों आदि से हटकर इस बिन्दु पर चर्चा करना अधिक प्रासंगिक है कि कैसे यह विश्व–भाषा के रूप में शीघ्र ही आधिकारिक रूप से प्रतिष्ठित हो सके?

मध्यकालीन पुनर्जागरण से लेकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न गतिविधियों में हिन्दी भाषा की व्यापक भूमिका रही। आज़ादी के पश्चात् इसे राष्ट्रीय भाषा का दर्जा तो नहीं मिला लेकिन 14 सितंबर को इस भाषा को संसद में राजभाषा का दर्जा मिलने के उपलक्ष्य में आधिकारिक रूप में पहला राष्ट्रीय हिन्दी दिवस 14 सितंबर, 1953 को मनाया गया। वस्तुतः 14 सितंबर, 1949 को ही संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 50 प्रतिशत से अधिक भारतीय हिन्दी भाषा एवं इसकी बोलियों का प्रयोग करते हैं। अगर हिन्दी को बोलने के अतिरिक्त आंशिक रूप से बोलने अथवा समझने वाली भाषा के संदर्भ में देखें तो विश्व की लगभग चौथाई आबादी इसे बोलती

है या समझती है। वर्तमान में हिन्दी भाषा जहाँ मनोरंजन के विभिन्न क्षेत्रों एवं माध्यमों में अपना वर्चस्व बनाए हुए है वहीं यह वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान एवं शोध की दृष्टि से भी एक लोकप्रिय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है।

हिन्दी के इसी विश्वव्यापी विस्तार को देखते हुए इसे और भी प्रचारित–प्रसारित करने तथा दुनिया के विभिन्न देशों में रह रहे भारतीयों एवं हिन्दी भाषियों को एक सूत्र में पिरोने के लिए वर्ष 1975 से 10 जनवरी को विश्व हिन्दी दिवस मनाया जा रहा है। पहला विश्व हिन्दी दिवस सम्मेलन 10 जनवरी, 1975 को नागपुर, महाराष्ट्र में तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री वी0डी0 जत्ती की अध्यक्षता तथा श्री शिव सागर रामगुलाम तत्कालीन प्रधानमंत्री मॉरीशस के मुख्य आतिथ्य में आयोजित हुआ, जिसमें 30 देशों के 122 प्रतिनिधियों ने प्रतिभाग किया था। हिन्दी के विकास के लिए उक्त विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया जाता है यद्यपि यह प्रतिवर्ष आयोजित नहीं होता है। इस वर्ष इस सम्मेलन का आयोजन 15 से 17 फरवरी, 2023 को फिजी में हो रहा है, जो 12वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन होगा।

हिन्दी के इसी प्रभाव को देखते हुए 10 जून, 2022 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में पारित एक प्रस्ताव द्वारा सहकारी कामकाज की भाषा के रूप में हिन्दी को भी स्वीकार किया गया।

वैसे हिन्दी भाषा स्वयं में ही अपना विकास करने में सक्षम है। कदाचित् श्री गोपाल सिंह नेपाली ने हिन्दी भाषा में अन्तर्निहित इसी क्षमता को देखते हुए लिखा था कि :

'दो वर्तमान का सत्य सरल, सुन्दर भविष्य के सपने दो!
हिन्दी है भारत की बोली तो अपने आप पनपने दो'!!

हिन्दी विश्वभाषा के रूप में शीघ्र सर्वमान्य हो सके, इसीलिए हम सभी का दायित्व है कि इस दिशा में प्राणपण से तत्पर रहकर मातृभाषा हिन्दी को विश्वभाषा की प्रतिष्ठा दिलाएँ।

यह अंक आप के हाथों में सौंपते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस अंक के रचनाकारों, उनके परिवार, प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी आप सभी का सहयोग यथावत् मिलता रहेगा।

शुभकामनाओं के साथ।

डॉ0 अनिल कुमार

मात-पिता बिन सब रीता है

डॉ. अनिल कुमार पाठक

यह जीवन, उनका वरदान,
मेरे लिए वही भगवान,
पिता राम, माई सीता है,
मात–पिता बिन सब रीता है।।

त्याग, तपस्या के पर्याय,
नभ सम पिता, अवनि सम माय।
इक रामायण, इक गीता है,
मात–पिता बिन सब रीता है।।

जब तक थे ये साथ हमारे,
कभी नहीं किसी से हारे,
सबकुछ हमने ही जीता है।
मात–पिता बिन सब रीता है।।

जबसे छूटा उनका साथ,
हुआ अभागा और अनाथ,
दुःख में ही हर पल बीता है।
मात–पिता बिन सब रीता है।।

जीवन से खुषियाँ सब ओझल,
जीवन लगता कितना बोझल,
गंगाजल भी अब तीता है।
मात–पिता बिन सब रीता है।।

❖❖❖

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म– 17 जुलाई 1932
निधन– 23 जनवरी 2008

तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण-कण में व्यापी बसन्त।।

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून' का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कालेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. 'प्रसून' की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए 'पारस परस' नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी की पुण्यतिथि पर विनम्र श्रद्धांजलि

❖❖❖

गोस्वामी तुलसीदास के प्रति

पं0. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

तुम जगे, तो जग पड़ी थी आज दुनिया।

चेतना के त्राण जागे, साधना के प्राण जागे।
व्योम में था चन्द्र जागा, चाँदनी थी आज दुनिया।
तुम जगे, तो जग पड़ी थी आज दुनिया।।

कल्पना साकार होकर, भावना में ज्वार भरकर।
आ गया था कवि युगों का पा रही उपहार दुनिया।
तुम जगे तो जग पड़ी थी आज दुनिया।

मेघ ने मल्हार गाया, व्योम में गुंजार छाया।
आ गया सम्राट जग में पा गई थी राज दुनिया।
तुम जगे, तो जग पड़ी थी आज दुनिया।

फड़फड़ाकर पंख अपने, देखते थे विहग सपने
क्रान्ति का आह्वान करने चल पड़ी थी आज दुनिया।
तुम जगे, तो जग पड़ी थी आज दुनिया।

व्योम कहता था कहानी, जागती थी रात रानी।
एक सौरभ के महक से खो रही थी लाज दुनिया।
तुम जगे, तो जग पड़ी थी आज दुनिया।

❖❖❖

अतुलनीय जिनके प्रताप का

रामनरेश त्रिपाठी

अतुलनीय जिनके प्रताप का,
साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर।
घूम घूम कर देख चुका है,
जिनकी निर्मल कीर्ति निशाकर।

देख चुके है जिनका वैभव,
ये नभ के अनंत तारागण।
अगणित बार सुन चुका है नभ,
जिनका विजय–घोष रण–गर्जन।

शोभित है सर्वोच्च मुकुट से,
जिनके दिव्य देश का मस्तक।
गूँज रही हैं सकल दिशायें,
जिनके जय गीतों से अब तक।

जिनकी महिमा का है अविरल,
साक्षी सत्य–रूप हिमगिरिवर।
उतरा करते थे विमान–दल,
जिसके विस्तृत वक्षस्थल पर।

सागर निज छाती पर जिनके,
अगणित अर्णव–पोत उठाकर।
पहुँचाया करता था प्रमुदित,
भूमंडल के सकल तटों पर।

नदियाँ जिनकी यश–धारा–सी,
बहती है अब भी निशि–वासर।
ढूँढो उनके चरण चिह्न भी,
पाओगे तुम इनके तट पर।

सच्चा प्रेम वही है जिसकी
तृप्ति आत्म–बलि पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है,
करो प्रेम पर प्राण निछावर।

देश–प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित।

❖❖❖

देश-गीत

श्रीधर पाठक

जय जय प्यारा, जग से न्यारा
शोभित सारा, देश हमारा,
जगत–मुकुट, जगदीश दुलारा
जग–सौभाग्य, सुदेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

प्यारा देश, जय देशेश,
अजय अशेष, सदय विशेष,
जहाँ न संभव अघ का लेश,
संभव केवल पुण्य–प्रवेश।
जय जय प्यारा भारत–देश।

स्वर्गिक शीश–फूल पृथिवी का,
प्रेम–मूल, प्रिय लोकत्रयी का,
सुललित प्रकृति–नटी का टीका,
ज्यों निशि का राकेश।
जय जय प्यारा भारत–देश।

जय जय शुभ्र हिमाचल–शृंगा,
कल–रव–निरत कलोलिनि गंगा,
भानु–प्रताप–समत्कृत अंगा,
तेज–पुंज तप–वेश।
जय जय प्यारा भारत–देश।

जग में कोटि–कोटि जुग जीवै,
जीवन–सुलभ अमी–रस पीवै,
सुखद वितान सुकृत का सीवै,
रहै स्वतंत्र हमेश।
जय जय प्यारा भारत–देश।

❖❖❖

गाँव की धरती

नरेन्द्र शर्मा

चमकीले पीले रंगों में अब डूब रही होगी धरती,
खेतों खेतों फूली होगी सरसों, हँसती होगी धरती!
पंचमी आज, ढलते जाड़ों की इस ढलती दोपहरी में
जंगल में नहा, ओढ़नी पीली सुखा रही होगी धरती!

इसके खेतों में खिलती हैं सींगरी, तरा, गाजर, कसूमय
किससे कम है यह, पली धूल में सोनाधूल–भरी धरती!
शहरों की बहू–बेटियाँ हैं सोने के तारों से पीली,
सोने के गहनों में पीली, यह सरसों से पीली धरती!

सिर धरे कलेऊ की रोटी, ले कर में मट्ठा की मटकी,
घर से जंगल की ओर चली होगी बटिया पर पग धरती!
कर काम खेत में स्वस्थ हुई होगी तलाब में उतर, नहा,
दे न्यार बैल को, फेर हाथ, कर प्यार, बनी माता धरती!

पक रही फसल, लद रहे चना से बूँट, पड़ी है हरी मटर,
तीमन को साग और पौहों को हरा, भरी–पूरी धरती!
हो रही साँझ, आ रहे ढोर, हैं रँभा रहीं गायें–भैंसें
जंगल से घर को लौट रही गोधूली बेला में धरती!

❖❖❖

दर्द पलता रहा

पद्मश्री विद्या विन्दु सिंह

दर्द पलता रहा चोट खाते रहे,
पर अधर ये मेरे मुस्कराते रहे।

मेरी कोशिश अंधेरों से लड़ने की थी,
स्नेह भरकर दिये में जलाते रहे।

पाँव घायल हमारे हुए भी तो क्या,
सारा जीवन उन्हें हम छिपाते रहे।

दर्द की हिमशिलाएँ पिघलती नहीं,
हम स्वयं को शिला सी बनाते रहे।

माँगते ही रहे खैर रिश्तों की हम,
सारे रिश्ते तो नजरें चुराते रहे।

अपने साये के पीछे नहीं हम चले,
धूप की ओर राहें बढ़ाते रहे।

वक्त हमको हमेशा ही छलता रहा,
पर उसे आइना हम दिखाते रहे।

वो जो पत्थर हमारे बदन पर लगे,
वार सहकर उन्हें हम हराते रहे।

❖❖❖

विलम्बित में

यतीन्द्र मिश्र

तुम्हारा सब–कुछ इतना तत्काल है
शायद ही कोई तुम्हें गा सकता हो
विलम्बित में

तुम्हें विलम्बित में ले जाना
संगीत को प्रपात की गरिमा से दूर ले जाना है।

जैसे दुनिया अपने होने को
धीरे–धीरे स्थगित किये जाती है
वैसे ही तुम उसका होना
तुरन्त वहाँ सम्भव करते हो।

ऐसे में तत्काल को
विलम्बित में बाँधने का विचार ही
झरने के कोलाहल से दूर जाने जैसा लगता है।

बहुत सारी चीजों को
फटकारकर एक ही बार में
दुरुस्त कर देने वाली तुम्हारी युक्ति देखकर
यही लगता है
जैसे रागों की धैर्य भरी साधना में
क्रान्ति
द्रुत में ही सम्भव है।

वहाँ विलम्बित में बाँधने का जतन
उतना ही विस्मय भरा है
जितना तुमको तत्काल से छिटकाकर
अवकाश में पसार देना.।

❖❖❖

मेरी पगडंडी मत भूलना

ओम निश्चल

बँगले में रहना जी
मोटर में घूमना
मेरी पगडंडी मत भूलना ।

भूल गयी होंगी वे
नेह छोह की बातें
पाती लिख लिख प्रियवर
भेज रही सौगातें।

हँसी–खुशी रहना जी
फूलों–सा झूमना
पर मेरी याद नहीं भूलना ।
मेरी पगडंडी मत भूलना ।।

माना, मैं भोली हूँ
अपढ़ हूँ, गँवारन हूँ
पर दिल की सच्ची हूँ
प्रेम की पुजारन हूँ।

गाँव से गुजरना जी
शहर से गुजरना जी
प्यार भरी देहरी मत भूलना ।
मेरी पगडंडी मत भूलना ।।

अलसाई आँखों में
आ रे निदिया आ रे,
पलकों में पाल रही हूँ
मैं सपने क्वाँरे

चाहे जो करना जी
एक अरज सुनना जी
ये क्वाँरे सपने मत तोड़ना ।
मेरी पगडंडी मत भूलना ।।

❖❖❖

मत करो अलगाव

ओम नीरव

नायकों! हम बालकों से मत करो अलगाव!
याद हम आगत करेंगे विगत का सद्भाव!

हम शिराओं के रुधिर तुम–
रुधिर के संचार,
प्राण हम–तुम देश के यह–
देश अपना प्यार ।
प्यार से भर दें सर्जन का बूँद–बूँद तलाव!

कुछ तपन से, कुछ जलन से
जगमगाती ज्योति,
फिर वही तम–तोम में पथ–
को दिखाती ज्योति ।
ज्योति की तुम वर्तिका, हम स्नेह सिंचित स्राव!

जाएँगे , ले जाएँगे भारत
भँवर के पार,
चाहिए नन्हे पगों को
कुछ दिशा, कुछ प्यार ।
हम बने पतवार युग की, तुम हमारी नाव!

वक्ष पर हमको सजा लो
हम महकते फूल,
फूल से लगने लगेंगे
पंथ के सब शूल ।
नेह से नीरव भरें हम, मातृ–भू के घाव!
नायकों! हम बालकों से मत करो अलगाव!

❖❖❖

मंजिल

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

सूरज डूब रहा है
और अँधेरा घिरने वाला है

मेरे आगे जो रास्ता है
काँटे बिखरे हैं उस पर
क्या करूँ मैं ?

बचा कर निकल जाऊँ इन्हें, बगल से
या चला जाऊँ छलाँग, इनके पार
क्या करूँ मैं ?

शायद आखिरी यात्री हूँ
आज की साँझ
संभव है कोई आ रहा हो
मेरे भी बाद
उसे दिखेंगे नहीं अँधेरे में, ये काँटे
क्या करूँ मैं ?

रुक जाऊँ काँटो के पहले
सचेत करने के लिए आने वालों को
या चुन कर हटा दूँ राह से इन्हें
क्या करूँ मैं ?

मेरी मंजिल दूर है, प्रभु
मगर
क्या यह मेरी मंजिल नहीं ?

❖❖❖

आजादी कै कपास

भारतेन्दु मिश्र

आजादी कै कपास
काति–काति दिनु–राति
अँधेरे उजेरे मा
चलावा गवा चरखा।
द्याँह का काठ
बनाय कै रचा गवा
बड़ी जतन ते
बनावा गवा चरखा।
अँगरेजन के खिलाफ
सबका ज्वारै खातिर
अपनि द्याँह मूँदै बदि
इज्जति बचावै का
घर–घर जुगुति ते
घुमावा गवा चरखा।
सांति औ अहिंसा का
यहै एकु हथियारु
बापू जी जीति लिहिन
यहिते भारत अपार
किसन के सुदर्सन जस
उठावा गवा चरखा।
आजादी हासिल भै
बँदरन का राजु मिला
स्वारथ कै पूनी ते
कुरतन का सूतु बना
अब कुरसी की खातिर
गावा गवा चरखा।

❖❖❖

गांव बचपन का

रामदरश मिश्र

गाँव बचपन का मुझको बुलाता सदा मुस्कराता हुआ,
रंग–बिरंगी शहरी तनहाइयों बीच आता हुआ।

तंग गलियाँ, खुले रास्ते, खेत खलिहान, अमराइयाँ,
मैं गुजरता था हमजोलियों संग हँसता–हँसाता हुआ।

जब कभी भी अकेला हुआ तो लगा, मैं अकेला नहीं,
अपनी फसल से था बात करता उन्ही में नहाता हुआ।

पेट खाली थे लेकिन दिलों में उमंगों की थी आँधियाँ,
हर महीना था साथी–सा चलता हमें थपथपाता हुआ।

रूठ जाते थे हम खेल ही खेल में साधकर चुप्पियाँ,
प्यार फिर–फिर बुलाता था हमको खुशी से रुलाता हुआ।

भूख थी प्यास थी जाने कितनी मगर कोई दहशत न थी,
वक्त चलता था सबको समेटे हुए, गीत गाता हुआ।

माँ की आँखों में ख्वाब कितने उमड़ते हमारे लिए,
कंठ में था पिता के, कोई दर्द–सा थरथराता हुआ।

कितनी खुशबू थी मिट्टी की, गाती बगीचे के बाजार में,
उसमें हँसता था घर अपने आँगन का उत्सव मनाता हुआ।

पूछता था कुशल–क्षेम घर का ठहरकर समय राह में,
दीखता था अगर कोई भटका मुसाफिर–सा जाता हुआ।

रंग फैले थे कितने फिजाओं के, घर से मदरसे तलक,
घाम में छाँह थी, छाँह में घाम था गुनगुनाता हुआ।

मानता हूँ कि अब वो नहीं है, न जाने कहाँ खो गया,
फिर भी लगता मेरी चेतना में सदा महमहाता हुआ।

❖❖❖

एक बूँद

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी
सोचने फिर–फिर यही जी में लगी,
आह! क्यों घर छोड़कर मैं यों कढ़ी?

देव!! मेरे भाग्य में क्या है बदा,
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में?
या जलूँगी फिर अंगारे पर किसी,
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में?

बह गयी उस काल एक ऐसी हवा
वह समुन्दर ओर आई अनमनी
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी।

लोग यों ही हैं झिझकते, सोचते
जबकि उनको छोड़ना पड़ता है घर
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर।

❖❖❖

मेरा देश

सोहनलाल द्विवेदी

ऊँचा खड़ा हिमालय आकाश चूमता है
नीचे पखार पग तल, नित सिंधु झूमता है,
गंगा पवित्र यमुना, नदियाँ लहर रही हैं
पल–पल नई छटाएँ, पग पग छहर रही हैं।

वह पुण्यभूमि मेरी
वह जन्मभूमि मेरी,
वह स्वर्णभूमि मेरी
वह मातृभूमि मेरी।

झरने अनेक झरते, जिसकी पहाड़ियों में
चिड़ियाँ चहक रही हैं, हो मस्त झाड़ियों में,
अमराइयाँ घनी हैं, कोयल पुकारती है
बहती मलय पवन है, तन मन सँवारती है।

वह धर्मभूमि मेरी
वह कर्मभूमि मेरी,
वह जन्मभूमि मेरी
वह मातृभूमि मेरी

जन्में जहाँ थे रघुपति, जन्मी जहाँ थीं सीता,
श्रीकृष्ण ने सुनाई वंशी पुनीत गीता,
गौतम ने जन्म लेकर, जिसका सुयश बढ़ाया
जग को दया दिखाई, जग को दिया दिखाया।

वह युद्धभूमि मेरी
वह बुद्धभूमि मेरी,
वह जन्मभूमि मेरी
वह मातृभूमि मेरी!

❖❖❖

कोयल

सुभद्रा कुमारी चौहान

देखो कोयल काली है पर
मीठी है इसकी बोली,
इसने ही तो कूक कूक कर
आमों में मिश्री घोली।

कोयल कोयल सच बतलाना
क्या संदेसा लायी हो,
बहुत दिनों के बाद आज फिर
इस डाली पर आई हो।

क्या गाती हो किसे बुलाती
बतला दो कोयल रानी,
प्यासी धरती देख मांगती
हो क्या मेघों से पानी?

कोयल यह मिठास क्या तुमने
अपनी माँ से पायी है?
माँ ने ही क्या तुमको मीठी
बोली यह सिखलायी है?

डाल डाल पर उड़ना गाना
जिसने तुम्हें सिखाया है,
सबसे मीठे मीठे बोलो
यह भी तुम्हें बताया है।

बहुत भली हो तुमने माँ की
बात सदा ही है मानी,
इसीलिये तो तुम कहलाती
हो सब चिड़ियों की रानी।

❖❖❖

पुस्तक

डा. दिविक रमेश

मुझको तो पुस्तक तुम सच्ची
अपनी नानी दादी लगती
ये दोनों तो अलग शहर में
पर तुम तो घर में ही रहती।
जैसे नानी दुम दुम वाली
लम्बी एक कहानी कहती
जैसे चलती अगले भी दिन
दादी एक कहानी कहती
मेरी पुस्तक भी तो वैसी
ढेरों रोज कहानी कहती।
पर मेरी पुस्तक तो भैया
पढ़ी–लिखी भी सबसे ज़्यादा
जो भी चाहूँ झट बतलाती
नया पुराना ज्यादा–ज्यादा
एक पते की बात बताऊँ
पुस्तक पूरा साथ निभाती
छूटें अगर अकेले तो यह
झटपट उसको मार भगाती।
मैं तो कहता हर मौके पर
ढेर पुस्तकें हमको मिलती
सच कहता हूँ मेरी ही क्या
हर बच्चे की बाँछे खिलती।
नदिया के जल सी ये कोमल
पर्वत के पत्थर सी कड़यल
चिकने फर्श से ज्यादा चिकनी
खूब खुरदरी जैसे दाढ़ी

❖❖❖

प्रेम कविता

अंजू शर्मा

ये सच है
तमाम कोशिशों के बावजूद
कि मैंने नहीं लिखी है
एक भी प्रेम कविता

बस लिखा है
राशन के बिल के साथ
साथ बिताये
लम्हों का हिसाब,

लिखी हैं डायरी में
दवाइयों के साथ,
तमाम असहमतियों की
भी एक्सपायरी डेट।

लिखे हैं कुछ मासूम झूठ
और कुछ सहमे हुए सच
एकाध बेईमानी
और बहुत सारे समझौते,

कब से कोशिश में हूँ
कि आंख बंद होते ही
सामने आये तुम्हारे चेहरे
से ध्यान हटा
लिख पाऊँ
मैं भी
एक अदद प्रेम कविता...

❖❖❖

नदी

नंदा पाण्डेय

बड़ी सहजता से
एक अटूट विश्वास
के साथ
सारे बंधन को उतार कर
सौंप कर अपना
सब कुछ...

अपनी नियति
अपना द्वंद
अपनी आशा
अपनी निराशा
अपनी व्यथा
अपना मान
अपना अभिमान
अपना भविष्य और अपना वर्तमान।

भागते हुए
आ लिपटती थी
जैसे वर्षों के बिछड़े
अपनी सुध–बुध भूल
एक दूसरे में समा जाने को
हो गए हों आतुर
उनके इस आंतरिक और हार्दिक।

मिलन पर तो जैसे
प्रकृति भी मुग्ध
हो जाती थी
उसके सुगंध से
मिलता था उसको
एक पार्थिव आनंद
होता था अहसास
खुद के जिंदा होने का

कहीं दूर बह जाने से
कुछ नया जरूर मिलता
पर जीवन का अर्थ और
भीतरी तलाश की तुष्टि
जहां निर्वाक होकर
जीना चाहती थी
अपनी उदासी के
हर क्षण को
शायद यह किनारा ही था...

वैसे मिट्टी की खुशबू आज भी पसंद है उसको!

❖❖❖

घर

गीताश्री

हम घर लेकर चलते रहे अपने कन्धों पर
पेड़ की तरह हम इसे कहीं रोप नहीं सके,
झण्डों की तरह कहीं गाड़ ना सके,
बहंगी में लचकते रहे आँगन के सपने,
नीम के पेड़ और मुण्डेर पर चहचहाती फुदगुदिया,
जिसे जाल में फँसा, रंगीन करके उड़ाया करते थे
रोज उन्हें मुण्डेर पर गिना करते थे,
कूद–कूद कर ताली पीटा करते थे,
सबको खारिज करता है समय,
घर के सपनो को बार–बार परखता रहा
हम ढोते रहे ख्वाहिशे भी आधी–अधूरी,
घर ना कन्धों से उतरा
ना सपने हल्के हुए, हम बोझ से दोहरे हुए
हमने तंज कसे जमाने पर
धुनते रहे अपने सिर कि ना बनना था ना बना हमारा घर
इस शहर में
हम आए थे, जब अपने साथ घर के सपने नहीं लाए थे
वहीं रख आए थे उन्हें, वापसी का वादा करके,
पता नही कब कैसे कन्धे पर चढ़ आया घर,
भाभी ने जो रास्ते की खुराक बाँधी थी पोटली में
जिसे हम खा ना सके आज तक
कि जिसे खाया जा सकता था पीढ़े पर बैठकर अपने आँगन में...
क्या पता कि घर ना बनना था कभी घर में।

❖❖❖

एक बार फिर

दीपा मिश्रा

आज वर्षों बाद
मन हो रहा है कुछ लिखूँ
लिखूँ कोई कहानी
या कोई संस्मरण
कोई कविता लिखूँ
या कुछ अपने बारे में
खीचूँ कुछ रेखाएँ
सफेद कागजों पर
भले टेढ़ी–मेढ़ी
छोटी या बड़ी
उठा लूँ वो पुराना ब्रश
भरूँ रंग उन तसवीरों में
जो रह गये थे अधूरे
पूरा न कर पाए थे हम
शायद कोई मजबूरी
या फिर कोई और वजह
रंग दूँ उन्हें फिर से
जीवन के नये रंगों से
गाऊँ कोई गीत
जिसे गुनगुनाना चाहती थी
तितलियों के, चिड़ियों के
बादल के या झरनों के
तैरूँ उन लहरों में
एक बार फिर
जिनमें उतरना चाहा था
बंद मुट्ठी को खोल लूँ फिर से
गिरा दूँ सारे रेत
जो समय ने भर दिये हैं
फैला लूँ अपने पंख और
उड़ जाऊँ खुली आकाश में
क्या तुम आओगे साथ मेरे
हाँ! आज वर्षों बाद
मैंने पाया है खुद को
एक बार फिर।

❖❖❖

जिन्दगी के चन्द लम्हे...

देवी नांगरानी

जिंदगी से चन्द लम्हें मैं अब चुराकर लाई हूँ
मौत को ही मीत अपना अब बनाकर आई हूँ ।

शिद्दतें देखी थी पहले पर कभी ऐसी न थी
याद से उनकी मगर रिश्ता निभाकर आई हूँ ।

गर्दिशों की गर्द से होते नहीं हिम्मत–शिकन
खून से तलवों पे मेंहदी मैं सजाकर आई हूँ ।

जूझना मुमकिन तो है इस जान–लेवा दौर में
खुदकुशी करने से खुद को बस बचाकर आई हूँ ।

सैकड़ों थे जिंदगी से यूँ हमें शिकवे–गिले
पर तेरे इसरार से सारे भुलाकर आई हूँ ।

याद के जुगनू अंधेरों को मिटा देंगे मगर
राह में तेरी दिया मैं इक जलाकर आई हूँ ।

जिस तराजू में था तोला, मुझ पे वो भारी पड़ा
मोल उसका मैं मगर सारा चुका कर आई हूँ ।

श्रद्धा और विश्वास के वो भाव मैं लाऊं कहाँ से
सजदे में सर को मैं अपने बस झुकाकर आई हूँ ।

गर्द है चेहरे पे दबी यूँ उदासी की जीम
जीते जी अपना ही मातम खुद मनाकर आई हूँ ।

❖❖❖

तुम आओ भी

निवेदिता

घने कोहरे से लिपटी शाम की नीली आभा में
ओस की नन्हीं बूदें चमकती हैं।

शाखों पर
पत्तियां जो हरी थी
बूंदों से भर गयी है।

झर रहे हैं कनेर के फूल
तुम्हारी हंसी की तरह
भर लेना चाहती हूँ सांसों में
गर्म, पिघलती हंसी।

फैल रही है रात कतरा–कतरा
मेरी बंजर भूमि में
खिल आए हैं गुलाब के फूल।

तुम्हारी देह मेरी आत्मा में गुथीं हुई
उत्तेजित चक्रवात की तरह
घुमड़ती रहती है।

मैं चाहती हूं सुनो तुम
वे गीत जो गाए नहीं गए
वे गीत जो रचे नहीं गए
वो प्रेम जो पुरानी राहों में
बिछा रह गया।

वो एकान्त जो धधकता रहा
प्यार करो मुझे
मुझमें डूब जाओ
कि मेरी आत्मा पर हो बारिश
शीत और आग के बीच
मैं खिलाऊँ जीवन के फूल।

❖❖❖

मिलकर बात करते हैं

डा. प्रज्ञा बाजपेयी

चल आज घर जल्दी चलते हैं,
ओवर टाइम तो अक्सर करते है,
आज सही समय पर निकलते हैं,
आज किसी और से नहीं, वक्त से
अपने लिये जंग लड़ते हैं...

चल आज बेवजह निकलते हैं,
घर के काम से नहीं,
रूहानी शाम के नाम निकलते हैं,
कुछ दिल्लगी, कुछ मनमर्जी करते हैं।

चल आज सारी रात जागते हैं,
सुबह जल्दी नहीं, देर से उठते है,
चल आज योग नहीं, सैर पर चलते हैं,
कुछ नया कुछ, बेतुका करते है।

चल ए सी से निकल, खुली हवा में चलते हैं,
कार से नहीं बाइक से चलते हैं,
कुछ जिंदादिली करते हैं,
बहुत दिन से किसी उधेड़ बुन में हूं,
चल आज भूलने का नाटक करते हैं,
थोड़ा टेंशन कम करते हैं।

चल आज कुछ बेतुकी बात करते हैं,
काम की नहीं,
कुछ अपनी, कुछ तेरी बात करते हैं,
चल आज कुछ अपने लिए करते हैं,
चल आज थोड़ा मुस्कुरा लेते हैं।
फोन बंद करते हैं,
चल मिलकर बात करते हैं।

❖❖❖

बसन्त के छींटे

मंजूषा मन

उदासी की सफेद चादर पर
नजर आ रहे हैं
पीले छींटे,

मौन साधे सूखे पपड़ाये होंठ
मुस्काने की चाह में
करने लगे हैं कोशिश
फैलने की...

शून्य में खोई सूनी आँखें
अब चमकना चाहतीं हैं,

मैं आईना देखती हूँ
परिवर्तन पर चौंक उठतीं हूँ
हल्के से मुस्कुरा देती हूँ खुद पर...

खिड़की से झांकते बसन्त से
लेकर एक बसन्ती पुष्प
खोंस लेतीं हूँ अपने जूड़े में

मैं, मुझे लुभाने लगी हूँ,
मैं एक सेल्फी लेकर
कर देती हूँ बसन्त के हवाले
और क्या देखतीं हूँ...
तुम भी बिखरे हो
हर ओर
बसन्त बनकर।

❖❖❖

छाँव

मृदुला शुक्ला

छाँव कहाँ होती है
अकेली खुद में कुछ
ये तो पेड़ों पर पत्तियों का
दीवारों पर छत का
वजूद भर है।

पतझड़ में पेड़ों से नहीं झरती।
महज पीली पत्तियां भर
कतरा कतरा करके
गिरती है पेड़ों की छाँव भी

बदलते मौसम के साथ
लौटती नहीं
केवल पत्तियां भर
लौट आते हैं परिंदों के घोसले।
ठिठकते हैं
मुसाफिरों के कदम भी

ठूंठ हुए पेड़ों के नीचे से
छाँव जा दुबकती है
पेड़ों के खोखले कोटरों में
इंतजार करती है रुकने का
बर्फीले तूफानों के
सेती हुई साँपों के अंडे।

छाँव और धुप के बीच
हमेशा तैनात होती है
मरन गुलाबी कोपलें पूरी मुस्तैदी के साथ।

❖❖❖

उदबोधन

मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी'

हिमालय सर है उठाए ऊपर, बगल में झरना झलक रहा है।
उधर शरद् के हैं मेघ छाए, इधर फटिक जल छलक रहा है।।

इधर घना बन हरा भरा है, उपल पर तरुवर उगाया जिसने।
अचम्भा इसमें है कौन प्यारे, पड़ा था भारत जगाया उसने।।

कभी हिमालय के शृंग चढ़ना, कभी उतरते हैं श्रम से थक के।
थकन मिटाता है मंजु झरना, बटोही छाये में बैठ थक के।।

कृशोदरी गन कहीं चली हैं, लिए हैं बोझा छुटी हैं बेनी।
निकलकर बहती हैं चन्द्र मुख से, पसीना बनकर छटा की श्रेनी।।

गगन समीपी हिमाद्री शिखरों, घरों में जलती है दीपमाला।
यही अमरपुर उधर हैं सुरगण, इधर रसीली हैं देवबाला।।

गिरीश भारत का द्वार पर है, सदा से है ये हमारा संगी।
नृपति भगीरथ की पुण्य धारा, बगल में बहती हमारी गंगी।।

बता दे गंगा कहाँ गया है, प्रताप पौरुष विभव हमारा?
कहाँ युधिष्ठिर, कहाँ है अर्जुन, कहाँ है भारत का कृष्ण प्यारा।।

सिखा दे ऐसा उपाय मोहन, रहैं न भाई पृथक हमारे।
सिखा दे गीता की कर्म शिक्षा, बजा के वंशी सुना दे प्यारे।।

अँधेरा फैला है घर घर में माधो, हमारा दीपक जला दे प्यारे।
दिवाला देखो हुआ हमारा, दिवाली फिर भी दिखा दे प्यारे।।

हमारे भारत के नवनिहालो, प्रभुत्व वैभव विकास धारे।
सुहृद हमारे हमारे प्रियवर, हमारी माता के चख के तारे।।

न अब भी आलस में पड़ के बैठो, दशोदिशा में प्रभा है छाई।
उठो, अँधेरा मिटा है प्यारे! बहुत दिनोम पर दिवाली आई।।

❖❖❖

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

जिसको लिए गोद में सागर,
हिम–किरीट शोभित है सर पर।
जहाँ आत्म–चिन्तन था घर–घर,
पूरब–पश्चिम दक्षिण–उत्तर
जहाँ से फैली ज्योति महान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

जिसके गौरव–गान पुराने,
जिसके वेद–पुरान पुराने।
सुभट वीर–बलवान पुराने,
भीम और हनुमान पुराने
जानता जिनको एक जहान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

जिसमें लगा है धर्म का मेला,
ज्ञात बुद्ध जो रहा अकेला।
खेल अलौकिक एक सा खेला,
सारा विश्व हो गया चेला
मिला गुरु गौरव सम्मान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

गर्वित है वह बलिदानों पर,
खेलेगा अपने प्रानों पर।
हिन्दी तेगे है सानों पर,
हाथ धरेगा अरि कानों पर
देखकर बाँके वीर जवान।
हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

❖❖❖

साबरमती के सन्त

प्रदीप

दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल,
साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल,
आँधी में भी जलती रही गाँधी तेरी मशाल,
साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल,
दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल।

धरती पे लड़ी तूने अजब ढंग की लड़ाई,
दागी न कहीं तोप न बंदूक चलाई,
दुश्मन के किले पर भी न की तूने चढ़ाई,
वाह रे फकीर खूब करामात दिखाई,
चुटकी में दुश्मनों को दिया देश से निकाल,
साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल,
दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल।
रघुपति राघव राजा राम।

शतरंज बिछा कर यहाँ बैठा था जमाना,
लगता था मुश्किल है फिरंगी को हराना,
टक्कर थी बड़े जोर की दुश्मन भी था ताना,
पर तू भी था बापू बड़ा उस्ताद पुराना,
मारा वो कस के दांव के उलटी सभी की चाल,
साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल,
दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल।
रघुपति राघव राजा राम।

जब जब तेरा बिगुल बजा जवान चल पड़े,
मजदूर चल पड़े थे और किसान चल पड़े,
हिंदू और मुसलमान, सिख पठान चल पड़े,
कदमों में तेरी कोटि कोटि प्राण चल पड़े,
फूलों की सेज छोड़ के दौड़े जवाहरलाल,
साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल,
दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल।
रघुपति राघव राजा राम।

❖❖❖

ध्वज-वंदना

रामधारी सिंह दिनकर

नमो, नमो, नमो...

नमो स्वतंत्र भारत की ध्वजा, नमो, नमो!
नमो नगाधिराज–शृंग की विहारिणी!
नमो अनंत सौख्य–शक्ति–शील–धारिणी!
प्रणय–प्रसारिणी, नमो अरिष्ट–वारिणी!
नमो मनुष्य की शुभेषणा–प्रचारिणी!
नवीन सूर्य की नई प्रभा, नमो, नमो!
नमो स्वतंत्र भारत की ध्वजा, नमो, नमो!

हम न किसी का चाहते तनिक, अहित, अपकार
प्रेमी सकल जहान का भारतवर्ष उदार
सत्य न्याय के हेतु, फहर फहर ओ केतु
हम विरचेंगे देश–देश के बीच मिलन का सेतु
पवित्र सौम्य, शांति की शिखा, नमो, नमो!
नमो स्वतंत्र भारत की ध्वजा, नमो, नमो!

तार–तार में हैं गुंथा ध्वजे, तुम्हारा त्याग
दहक रही है आज भी, तुम में बलि की आग
सेवक सैन्य कठोर, हम चालीस करोड़
कौन देख सकता कुभाव से ध्वजे, तुम्हारी ओर
करते तव जय गान, वीर हुए बलिदान
अंगारों पर चला तुम्हें ले सारा हिन्दुस्तान!
प्रताप की विभा, कृषानुजा, नमो, नमो!

नमो स्वतंत्र भारत की ध्वजा, नमो, नमो!

❖❖❖

शहीदों की चिताओं पर

जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी'

उरूजे कामयाबी पर कभी हिन्दोस्ताँ होगा,
रिहा सैयाद के हाथों से अपना आशियाँ होगा।

चखाएँगे मजा बर्बादिए गुलशन का गुलचीं को,
बहार आ जाएगी उस दम जब अपना बागबाँ होगा।

ये आए दिन की छेड़ अच्छी नहीं ऐ खंजरे कातिल,
पता कब फैसला उनके हमारे दरमियाँ होगा।

जुदा मत हो मेरे पहलू से ऐ दर्दे वतन हरगिज,
न जाने बाद मुर्दन मैं कहाँ औ तू कहाँ होगा।

वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है,
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तिहाँ होगा।

शहीदों की चिताओं पर लगेगें हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा।

कभी वह दिन भी आएगा जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमाँ होगा।

❖❖❖

सब कुछ नहीं होता समाप्त

मनीष मिश्र

सब कुछ थोड़े ही सूख जाता है।
बच ही जाती है स्मृति की नन्ही बूँद
मिल ही जाता है प्रिय का लगभग खो गया पता,
अलगनी में सूखते हुए कपड़ों पर बच ही जाती है
देह–गंध की नम आँच
पाँयचे के घुटनों पर रेंग ही आती है मुलायमियत

सब कुछ थोड़े ही खत्म हो जाता है
मृत्यु के बाद भी बचे रहते हैं अस्थि फूल
सूखे जलाशय के तलछट में जीवित रहती है एक अकेली मछली,
विशाल मरुस्थल की छाती पर सूरज के खिलाफ
लहराता है खेजरी का पेड़।

सब कुछ नहीं होता समाप्त।
हमारे बाद भी बचा रहता है जीने का घमासान।
भूख के बावजूद बच ही जाते है थाली में अन्न के टुकड़े,
निकल ही आता हैं पुराने संदूक से जीर्ण होता प्रेम–पत्र।
सबसे हारे क्षणों में मिल ही जाता है दोस्त ठिकाना।

सब कुछ थोड़े ही मिट पाता है।
उम्र के बावजूद भी बचे रहते है देह पर प्रेम–निशान,
जीवन के सबसे मोहक क्षणों में भी चिपका रहता है बीत जाने का भय।

सब कुछ नहीं होता समाप्त।

❖❖❖

हमारी आँखें लुप्त हो रही हैं

रवि कुमार

हम एक अंधेरी खान में जी रहे हैं।

हम कई घंटों तक
रोजी–रोटी की आपाधापी में रहते हैं।
सोते हैं कई घंटे
बाक़ी समय में
खुद को उलझाये रखने के लिए
हमने कई साजोसामान जुटाए हुए हैं।

हम उलझे रहते हैं।
हम इतना व्यस्त रहते हैं कि
खान के मुहानों के बारे में सोचने की
हमें फुर्सत नहीं रहती।
और ना ही खान के मुहाने टटोलने लायक
ऊर्जा ही हममें शेष बचती।

हम अंधेरे को ही
अपनी नियति समझने लगे हैं,
और खोजते रहते हैं शास्त्रों में
अंधेरे की सनातनता।

हम कोशिश करते हैं कि
हम रोशनी के मायने भी भूल जाये
दरअसल
अंधेरा हमारे अन्दर
इतना गहरा पैठ गया है
कि हम जुगनुओं से भी भय खाते हैं।
जरा भी रोशनी हमें बर्दाश्त नहीं होती

अंधेरा हमारे जीवन की
अनिवार्यता होता जा रहा है।
हम खुद–ब–खुद
अंधेरा होते जा रहे हैं।

चूँकि अंधेरे में
इनकी कोई आवश्यकता नहीं होती।
हमारी आँखें
लुप्त हो रही हैं, धीरे–धीरे।

❖❖❖

गवाही

रजत कृष्ण

तालाब में फेंका गया कंकड़
कितना ही छोटा हो
हलचल मचाए बिना
नहीं रहता ।

प्रतिरोध का स्वर
चाहे एक ही कण्ठ से
क्यों न फूटा हो
पूरा हवा में गुम नहीं होता ।

पीड़ा दबाए कुचले गए लोगों की पीड़ा
कभी पोते को कहानी सुना रहे
दादा की आँखों में उतरता है
तो कभी उन कण्ठों से
फूट पड़ती
जो जमींदार के खेतों में
कटाई करने आई बनिहारिनों की
होती है ।

कितने ही जतन कर लिए जाएँ छुपाने के
खून रंगे हाथों की गवाही
कई बार
कटे हुए नाखून ही देते हैं ।।

❖❖❖

समय विश्वास का

विनय मिश्र

डूब ही जाता
समय विश्वास का
हाथ में तिनका था
पूर्वाभास का।

बेपरों की उड़ रही जो
किंवदंती है
कर्ण की सारी कथा में
व्यथा कुन्ती है
एक जीवन माह ज्यों
मलमास का।

दोपहर तक जिन्दगी की शाम
अलसाई मिली
केक छल का काटने को
सोच की चमकी छुरी
झिलमिलाया जब सितारा आस का।

कौन किसके पाश में है
शान्ति हो कि युद्ध
तोप से दहली दिशाएँ
थरथराए बुद्ध
नाज था हमको
इसी वातास का।

❖❖❖

वेदना से प्रीति की भाँवर हुई तो

संदीप 'सरस'

वेदना से प्रीति की भाँवर हुई तो,
भावना के पाँव भारी हो गए हैं।

हर कली का पुष्प से संबंध क्यों है?
कंटकों का पुष्प से अनुबंध क्यों है?
जब प्रणय का गान है प्राणों से प्यारा,
तो कहो फिर गीत पर प्रतिबंध क्यों है?

आह ने उर में जलन के बीज घोले,
तो नयन के अश्रु खारी हो गए हैं।

आज मेरी गूँज फिर अनुगूँज बनकर
पास मेरे हाथ खाली लौट आयी।
कर दिया तुमने तिरस्कृत तो बिचारी,
भावना हो कर सवाली लौट आयी।

देहरी जबसे तुम्हारी छू के लौटे,
गीत मेरे ब्रह्मचारी हो गए हैं।

❖❖❖

रचना क्या है?..

हिमांशु पाण्डेय

रचना क्या है, इसे समझने बैठ गया मतवाला मन
कैसे रच देता है कोई, रचना का उर्जस्वित तन ।

लगा सोचने क्या यह रचना, किसी हृदय की वाणी है,
अथवा प्रेम–तत्व से निकली जन–जन की कल्याणी है,
क्या रचना आक्रोश मात्र के अतल रोष का प्रतिफल है
या फिर किसी हारते मन की दृढ़ आशा का सम्बल है ।

'किसी हृदय की वाणी है'रचना, तो उसका स्वागत है
'जन–जन की कल्याणी है' रचना, तो उसका स्वागत है
रचना को मैं रोष शब्द का विषय बनाना नहीं चाहता
'दृढ़ आशा का सम्बल है' रचना तो उसका स्वागत है ।

'झुकी पेशियाँ, डूबा चेहरा' ये रचना का विषय नहीं है
'मानवता पर छाया कुहरा' ये रचना का विषय नहीं है
विषय बनाना हो तो लाओ हृदय सूर्य की भाव रश्मियाँ
'दिन पर अंधेरे का पहरा' ये रचना का विषय नहीं है ।

रचना की एक देंह रचो जब कर दो अपना भाव समर्पण
उसके हेतु समर्पित कर दो, ज्ञान और अनुभव का कण–कण
तब जो रचना देंह बनेगी, वह पवित्र सुन्दर होगी
पावनता बरसायेगी रचना प्रतिपल क्षण–क्षण, प्रतिक्षण ।

❖❖❖

श्रीधर पाठक

जन्म- 11 जनवरी 1860, निधन- 13 सितम्बर 1928

निज स्वदेश ही एक सर्व–पर ब्रह्म–लोक है,
निज स्वदेश ही एक सर्व–पर अमर–ओक है।

निज स्वदेश विज्ञान–ज्ञान–आनंद–धाम है,
निज स्वदेश ही भुवि त्रिलोक–शोभाभिराम है।

सो निज स्वदेश का, सर्व विधि, प्रियवर, आराधन करो,
अविरत–सेवा–सन्नद्ध हो सब विधि सुख–साधन करो।

सृजन स्मरण

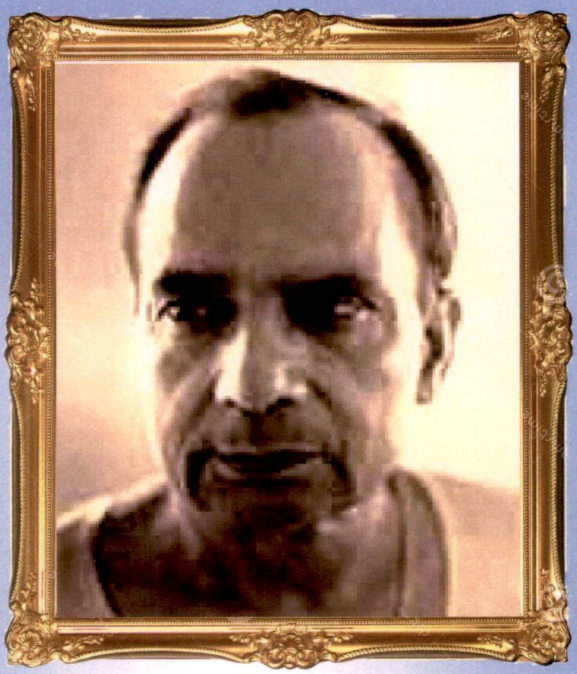

नरेन्द्र शर्मा

जन्म- 28 फरवरी 1913, निधन- 11 फरवरी 1989

जय जयति भारत भारती!
अकलंक श्वेत सरोज पर वह
ज्योति देह विराजती!
नभ नील वीणा स्वरमयी
रविचंद्र दो ज्योतिर्कलश
है गूँज गंगा ज्ञान की
अनुगूँज में शाश्वत सुयश
हर बार हर झंकार में
आलोक नृत्य निखारती
जय जयति भारत भारती!